व्युत्पत्ति-मूलक वेद-शब्दार्थ

(आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र)

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।
वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रुम॥[१]

अर्थात् वेदोंने जिन कर्मोंका विधान किया है, वे धर्म हैं और जिनका निषेध किया है, वे अधर्म हैं। वेद स्वयं भगवान्‌के स्वरूप हैं। वे उनके स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास एवं स्वयम्प्रकाश ज्ञान हैं—ऐसा हमने सुना है।

साक्षात्कृतधर्मा तपोलीन महर्षियोंद्वारा वेद प्रत्यक्षदृष्ट हैं।[२] विद्यमान पदार्थ ही दृष्ट होता है, अतः वेद पूर्वसे ही विद्यमान हैं। तपस्यमान ऋषि-विशेषको कालविशेषमें वेद प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। यही उन ऋषियोंका ऋषित्व है, ऐसा जानना चाहिये।

'वेद' शब्दके व्युत्पत्तिमूलक अर्थोंसे उपर्युक्त सभी विषय स्पष्ट होते हैं। पाणिनीय व्याकरणके अनुसार विभिन्नार्थक पाँच '**विद**' धातुओंसे 'वेद' शब्द निष्पन्न होता है, जो विभिन्न अर्थोंको अभिव्यक्त करता है।

(१) अदादिगणीय '**विद ज्ञाने**' धातुसे करणमें '**घञ्**' प्रत्यय करनेसे निष्पन्न वेदका अर्थ होता है—'**वेत्ति—जानाति धर्मादिपुरुषार्थचतुष्टयोपायान् अनेन इति वेदः।**' अर्थात् जिसके द्वारा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-रूप पुरुषार्थ-चतुष्टयको प्राप्त करनेके उपायोंको जानते हैं, उसे 'वेद' कहा जाता है। प्रत्यक्ष तथा अनुमानसे अगम्य उपायोंको चूँकि वेदके द्वारा जानते हैं, यही वेदका वेदत्व अर्थात् अज्ञातार्थज्ञापकत्व है[३]। तात्पर्य यह कि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे भी जिन विषयोंका ज्ञान नहीं हो सकता, उनका भी ज्ञान वेदके द्वारा हो जाता है।

(२) दिवादिगणमें पठित '**विद सत्तायाम्**' धातुसे भावमें '**घञ्**' प्रत्यय करनेसे निष्पन्न 'वेद' शब्द अपने सनातन सत्-रूपको बतलाता है। महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यासने वेद शब्दके इसी सत्-रूपका स्पष्ट प्रतिपादन

१-श्रीमद्भागवत (६। १। ४०)।

२-(क) तद् यद् एनान् तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत् त ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते (निरुक्त २। ११)।
(ख) युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः। लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा॥

३-प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते। एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

करते हुए महाभारतमें कहा है—

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥

(३) तौदादिक '**विद्लृ लाभे**' धातुसे करणमें '**घञ्**' प्रत्यय करनेपर निष्पन्न 'वेद' शब्द '**विन्दति**' अथवा **विन्दते लभते धर्मादिपुरुषार्थान् अनेन इति वेदः**' इस तरह पुरुषार्थ-चतुष्टय-लाभरूप अर्थको व्यक्त करता है अर्थात् वेदसे न केवल धर्मादि पुरुषार्थोंको जानते हैं, अपितु उनके उपायोंको समझते हैं तथा वेदके द्वारा उन्हें प्राप्त भी करते हैं। वेद-निर्दिष्ट उपायोंके द्वारा सविधि अनुष्ठान करनेसे पुरुषार्थोंकी सिद्धि होती है।

(४) रुधादिगणीय '**विद विचारणे**' धातुसे करण-अर्थमें '**घञ्**' प्रत्ययके योगसे निष्पन्न 'वेद' शब्द '**विन्ते-विचारयति सृष्ट्यादिप्रक्रियाम् अनेन इति वेदः**'—इस प्रकार सृष्टि-प्रक्रिया-विचाररूप अर्थको अभिव्यक्त करता है। तात्पर्य यह है कि युगके आरम्भमें विधाता जब नूतन सृष्टि-निर्माणकी प्रक्रियाके विचारमें उलझे रहते हैं, तब नारायण अपने वेदस्वरूपसे ही उनकी समस्याका समाधान करते हैं और विधाता वेद-निर्देशानुसार पूर्वकल्पकी तरह नयी सृष्टि करते हैं[१]।

महर्षि व्यासने श्रीमद्भागवतमें इस विषयको स्पष्ट करते हुए कहा है—

सर्ववेदमयेनेदमात्मनाऽऽत्माऽऽत्मयोनिना ।
प्रजाः सृज यथापूर्वं याश्च मय्यनुशेरते॥[२]

परमात्मयोगी भगवान् नारायणने अपने सर्ववेदस्वरूपसे सृष्टि-प्रक्रियामें किंकर्तव्यविमूढ स्रष्टाको निर्देश दिया कि कल्पान्त-कालसे मेरे स्वरूपमें अवस्थित जो प्राणी हैं, उनकी यथापूर्व—पूर्वकल्पके अनुसार ही सृष्टि करें। ऐसा उपदेश कर भगवान्के अन्तर्हित हो जानेपर लोकपितामह ब्रह्माने दैहिक तथा मानसिक विभिन्न प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि की[३]। इससे स्पष्ट होता है कि वेदके द्वारा ही सृष्टि-प्रक्रियाका निर्देश मिलता है।

(५) चुरादिगणीय '**विद चेतनाख्याननिवासेषु**' इस '**विद**' धातुसे चेतन-ज्ञान, आख्यान तथा निवास—इन तीन अर्थोंका करण-अर्थमें '**घञ्**' प्रत्यय करनेसे निष्पन्न 'वेद' शब्द सृष्टिके आदिमें पूर्वकल्पके अनुसार कर्म, नाम आदिका आख्यान होना अर्थ प्रतीत होता है।

वेद शब्दके इसी अर्थको सुव्यक्त करते हुए महर्षि मनुने लिखा है—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे॥

(मनु० १। २१)

अर्थात् प्रलयके बाद नूतन सृष्टिके आरम्भमें विधाता वेदाख्यानके अनुसार वस्तु-जगत्के नाम, कर्म, स्वरूप आदिका विधान करते हैं, जिससे पूर्वकल्पके अनुसार ही इस कल्पमें भी नामादिका व्यवहार होता है।

उपर्युक्त विभिन्नार्थक पाँच धातुओंसे निष्पन्न वेद शब्दके अर्थोंमें सभी विषय समाविष्ट हो जाते हैं। विशेषतः सत्तार्थक, ज्ञानार्थक तथा लाभार्थक '**विद**' धातुओंसे निष्पन्न वेद शब्दार्थसे सन्मयत्व, चिन्मयत्व एवं आनन्दमयत्वका बोध होनेसे वेदका सच्चिदानन्दमय—'**वेदो नारायणः साक्षात्**'—यह रूप सिद्ध होता है। अतएव शब्दब्रह्म तथा परब्रह्म दोनोंके एकत्व-प्रतिपादक '**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म**' तथा '**गिरामस्म्येकमक्षरम्**'—ये भगवद्वचन[४] सुसंगत ही होते हैं। इसी विषयकी ओर कठोपनिषद्का भी स्पष्ट संकेत है—

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥[५]

इस तरह मन्त्र-ब्राह्मणात्मक[६] वेद आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक त्रिविध अर्थोंके प्रतिपादक हैं, पुरुषार्थ-चतुष्टयके साधक हैं, समस्त ज्ञान-विज्ञानके संवाहक हैं तथा भारतीय ऋषि-महर्षि-मनीषियोंके प्रत्यक्षज्ञानके महान् आदर्श हैं।

१-धाता यथापूर्वमकल्पयत् (ऋक्० १०। १९०। ३)।
२-श्रीमद्भा० (३। ९। ४३)।
३-अन्तर्हिते भगवति ब्रह्मा लोकपितामहः। प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीर्मानसीर्विभुः॥ (श्रीमद्भा० ३। १०। १)
४-गीता ८। १३ तथा गीता १०। २५।
५-कठोपनिषद् (१। २। १६)।
६-मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।